P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय राजनीति एवं जातिगत प्रभाव

बनवारीलाल मैनावत
सह आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
गंगापुर सिटी, राजस्थान

सारांश

भारतीय समाज की संरचना जातिगत पद सौपान पर आधारित है। इसका प्रभाव भारतीय राजनीति पर भी देखने को मिलता है। जातियॉ अब एक दबाव समूह के रूप में प्रभाव डालने लगी है। राजनीतिक दल भी अपनी रणनीति जातिगत समीकरणों को ध्यान में रखकर बनाने लगे हैं। चुनाव जीतने के बाद सरकार की संरचना तथा नीतियों के निर्धारण पर भी जातिगत प्रभाव देखा जा सकता है किन्तु जातियों के प्रति तुष्टीकरण की नीति को ही बढावा देते रहने से भारत का विकास संभव नहीं है। लोक–कल्याणकारी राज्य को सफल बनाने के लिए जातिगत राजनीति के लिए कुछ सीमाऍ निर्धारित होनी चाहिए। वर्तमान में युवा वर्ग रोजगार, विकास, वैज्ञानिकता के क्षेत्र में कदम रखना चाहता है, जो देश को आगे बढ़ा सके। इसके लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति की जरूरत है व राजनीतिक दलों को जातिगत राजनीति को कम करना पडेगा। राजनीति को सही दिषा निर्देषन के लिए बुद्धिजीवियों का लोक अभियान मंच बनाया जा सकता है।

मुख्य शब्द : भारतीय राजनीति, जाति की भूमिका, जाति व्यवस्था, वयस्क मताधिकार, विकास, तुष्टीकरण नीति, उम्मीदवार, मतदाता, प्रतिस्पर्द्धा, जातिगत प्रभाव, लोक अभिमान, लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व आरक्षण, रोजगार, नई दिशा।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में जाति एक वंशानुगत, सगोत्रीय और सामान्यतः स्थानीय समूह है, जिसका एक विशिष्ट व्यवसाय से पारम्परिक सम्बन्ध होता है। जाति का समाज में एक निश्चित पद सौपान होता है। एक विशिष्ट जाति में व्यक्ति का जन्म मात्र ही नहीं होता वरन् इसके द्वारा ही उसके लिए उन विभिन्न भूमिकाओं का निर्धारण भी होता है, जो उसे जीवन पर्यन्त पूर्ण करनी होती है। जाति समूह की सदस्यता अनिवार्य होती है। एक सामान्य भारतीय अपना सबकुछ त्याग सकता है परन्तु वह जाति व्यवस्था में अपने विश्वास को नहीं त्याग सकता है। हेन्सन एवं डगलस का मत है कि जाति की अवधारणा को ध्यान में न रखकर किया गया भारतीय राजनीति का अध्ययन अपूर्ण सिद्ध होगा। स्वतंत्रता से पूर्व भारत के दक्षिण एवं पश्चिम के कुछ भागों को छोड़कर कहीं भी जाति राजनीति का महत्वपूर्ण अंग नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संसदीय लोकतंत्र एवं आधुनिक संस्थाओं को अपनाने के साथ यह आशा की गई थी कि जाति की संकुचित मानसिकता और क्षेत्रीय प्रभाव उत्तरोत्तर कम होते जायेंगे। परन्तु राजनीतिक परिवेश में समयानुकूल जाति आधारित राजनीतिक दलों ने जाति विषयक अपीलों, गुटबंदियों एवं तनावों ने चुनाव में जाति घटक को परिधि में लाकर खड़ा कर दिया है। जहॉ सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में जाति शक्ति घटी है वहॉ राजनीति एवं प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों तथा केन्द्र व राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है। डॉ. रजनी कोठारी का मानना है कि कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता है। अब भारतीय राजनीतिज्ञ जातिय आधार पर वोट बटोरने में पारंगत होने लगे हैं। ग्रेनबिल ऑस्टिन के अनुसार भारत में जातीय संघ राजनीतिक निर्णयों को उसी प्रकार प्रभावित करते है जिस प्रकार पश्चिमी देशों में दवाब समूह करते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय राजनीति में जातिगत राजनीति तथा वयस्क मताधिकार से अब तक उपेक्षित रही जातियों में चेतना आई है। राजनीति में उनकी भागीदारी बढ़ी है। किन्तु राजनीतिक दलों पर जातिगत राजनीति के उपयोग करने की एक सीमा निर्धारित होनी चाहिए। तुष्टीकरण की नीति से समस्याओं का समाधान

नहीं होता बल्कि अनेक नवीन समस्याऍ पैदा होने लगती है। नई सीमित करते हुए नये परिवेष के अनुसार राजनीतिक मूल्यों को समाहित करते हुए, राजनीति को समयानुकूल दिषा दी जाये।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में समानता, वयस्क मताधिकार ने बहुमत की इच्छा से निर्णय लेना एवं सरकार निर्माण व परिवर्तन भी बहुमत पर आधारित कर दिया है। इसमें एक समूह जो सत्ता प्राप्त करना चाहता है, उसे अन्य समूहों का समर्थन लेना आवश्यक हो गया है। दूसरी तरफ प्रत्येक जाति समूह की राजनीति में सहभागिता बढ़ने से उनमें भी राजनीतिक जागरूकता आने लगी है और वे स्वयं भी सत्ता प्राप्ती की आकांक्षा रखने लगे हैं, जबकि स्वतंत्रता से पूर्व तक उनकी राजनीतिक सहभागिता शून्य थी। वे अब राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करने लगे हैं। जातियॉ अब हित समूहों के रूप में भी काम करने लगी है। इस प्रकार सामाजिक तौर पर जाति पदसौपान/असमानता में उदारीकरण तो आया है, किन्तु जाति का राजनीतिक क्षेत्र में उपयोग अधिक बढ़ रहा है। प्रारम्भ में सत्ता के लिए संघर्ष उच्च जातियों के मध्य रहा था, किन्तु धीरे–धीरे मध्यम एवं निम्न समझी जाने वाली जातियॉ भी सत्ता के लिए संघर्ष में आगे आने लगी है। भारतीय लोकतंत्र में जाति वह धुरी बन चुकी है, जिसके माध्यम से नवीन मूल्यों एवं तरीकों की खोज की जा रही है। जाति के आधार पर ही जनता को लोकतांत्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।

जाति की राजनीति में अन्तःक्रिया

भारतीय समाज की संरचना जातीय आधार पर है, सामाजिक संगठन ही राजनीति का स्वरूप निर्धारित करता है। राजनीतिक दल एवं चुनाव प्रत्यासी अपना समर्थन जुटाने के लिए जातीय संगठनों का सहारा लेकर चलते हैं। भारत की राजनीति जाति के ईर्द–गिर्द घूमती है। चुनाव में प्रत्यासी का चयन भी जातीय समीकरणों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है। जिसे हम जातिवाद की राजनीति कहते हैं वह वास्तव में जाति का राजनीतिकरण है। भारतीय राजनीति में जातियॉ प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने लगी है। इस प्रकार समाज में जातियॉ ही राजनीति की शक्ति बन गई है। विभिन्न जातियॉ एक दूसरे के साथ सहयोग करके अपने समर्थित प्रत्यसियों को सत्ता तक पहुॅचाने लगी है।

जातीय संघों एवं जातीय पंचायतों ने जातिगत राजनीति की महत्वाकांक्षाऍ बढाई है। शिक्षा, औद्यौगीकरण, शहरीकरण तथा आधुनिकीकरण से जातियॉ समाप्त नहीं हुई बल्कि उनमें एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला है। किसी पंचायत क्षेत्र या राज्य में जिस जाति का बाहुल्य होता है, वह वहॉ की राजनीति की प्रभावक तत्व बन जाती है। जातीय संघ अपनी जाति के हितों को सुरक्षित करने के लिए राजनीतिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इसी दबाव के चलते आरक्षण की राजनीति चल पड़ी है। यह ऐसा मुद्रा बन गया है कि कोई भी राजनीतिक दल की सरकार इसके साथ छैड़ छाड़ करने की हिम्मत नहीं जुटा पाती है। राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर तो कम उलझने देश के विकास में बाधा पैदा करती है। आवष्यकता है जटिलता बढ़ाने वाले तत्वों को प्रभाव दिखता है। किन्तु स्थानीय एवं राज्य स्तर की राजनीति में जाति का अधिक प्रभाव होता है।

राजनीति में जाति की भूमिका

भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका बढ़ती जा रही है। जैसा कि जय प्रकाश नारायण ने कहा था कि जाति भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण राजनीतिक दल है। मौरिस जोन्स का भी मानना है कि राजनीति के लिए जाति का महत्व पहले की तुलना में बढ़ा है। इसका कारण विनोबा भावे के अनुसार वयस्क मतधिकार का दिया जाना है। स्वतंत्रता के बाद नवीन संविधान लागू हुआ था जिसमें वयस्क मताधिकार के प्रावधान ने प्रत्येक व्यक्ति व जाति का महत्व बढ़ा दिया है, क्योंकि निर्णय बहुमत से होते हैं। राजनीतिक निर्णयों को जातियों के दबाव प्रभावित करते है। इसी प्रकार राजनीतिक दलों में किसी क्षेत्र में प्रत्यासी खड़ा करते समय वहॉ किस जाति का बाहुल्य है उसी को आधार बनाया जाता है। मतदान एवं चुनावी प्रचार के समय जातीय मत व्यवहार को उकसाया जाता है जैसे पिछड़ों का दल सपा, अनुसूचित जाति/जनजाति का दल बस पा इसी प्रकार अगड़ों का दल बीजेपी तथा मुस्लिमों के लिए कॉग्रेस आदि अपना अपना वोट बैंक बन चुका है। इन्हीं समीकरणों के आधार पर चुनावी राजनीति चलती है। केन्द्र एवं राज्यों की सरकार गठन होते समय मंत्रीमंडल में भी जातीय प्रतिनिधित्व को ध्यान में रखा जाता है। जातीय संख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिये जाने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त आरक्षण देने में भी जातियों को आधार बनाया गया है, और जातियों को प्रभावित करने के लिए आरक्षण प्रक्रिया का विस्तार निरन्तर हो रहा है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपने वोट बैक में वृद्धि करने के लिए जातियों को सन्तुष्ट करने का प्रयास करता है। हॉल ही में हुए विधान सभा चुनावों के दौरान राजनीतिक गणितज्ञ सामाजिक जातियों को ध्यान में रखकर मतों का राजनीतिक गुणा–भाग करते नजर आये।

2 अप्रैल का दलित आन्दोलन, बाद का सवर्ण भारत बंद आन्दोलन व कुछ समय पूर्व हुए विधान सभा चुनावोत्तर का परिदृश्य तथा 10 प्रतिशत सवर्ण आरक्षण आदि विषय भारतीय राजनीति को जातियता के इर्द–गिर्द घुमाते नजर आते हैं। कई बार जातीय मुद्दों से जुड़े मामलों पर तनाव के चलते हुए हुई हिंसा और आगजनी के फलस्वरूप दर्ज अपराधिक मुकदमों को लेकर तो कहीं संवैधानिक पदों पर बैठते ही जनप्रतिनिधियों द्वारा खुल्लम–खुल्ला अपनी जाति को प्राथमिकता देने की बातें करने से राजनीतिक माहौल में गर्माहट आती है। इसी के चलते दुनियाभर के राजनीतिक वैज्ञानिक कहते हैं कि भारतीय राजनीति में भले ही विकास की बातें होने लगी है, किन्तु वास्तविकता में भारतीय राजनीति अब भी जातीय व्यवस्था के आस–पास ही घूम रही है। जबकि आवश्यकता है रोजगारों में वृ(करने की, आर्थिक विकास करने की, 2018 में बेरोंजगारी की दर 7.38 प्रतिशत थी और पिछले वर्ष भर में 91.4 लाख लोगों ने अपनी रोजी

रोटी खोई है, इसका प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। आरक्षण व्यवस्था के जरिये सरकारें जिन नौकरियों की बातें करती है, उनका दूर–दूर तक कहीं पता नहीं है। लोगों को वास्तव में आरक्षण की नहीं रोजगार की जरूरत है। तुष्टीकरण की नीति से विकास नहीं होता है। सबका साथ सबका विकास, आर्थिक विकास, रोजगार, मेक इन इण्डिया तथा स्किल इण्डिया आदि पर किसी का ध्यान नहीं जा रहा है। जातिय आधार पर दरारें पड़ने लगी है, जो देश के विकास व राजनीति के लिए सही नहीं है। केवल चुनावों में जाति समूह को प्रभावित करके चुनाव जीतना ही राजनीतिक दलों का उद्देश्य रह गया है। अधिक प्रचार–प्रसार करना पूर्व सरकारों पर दोष मढ देना अपने विकास कार्यों पर कोई चर्चा न करना यही विजन दलों का है। येन–केन प्रकारेण चुनाव जीतने की व्यवस्था बनाना देश की राजनीति को कहॉ ले जायेगा पता नहीं? जातियों के लिए तुष्टीकरण की नीति से देश का विकास नहीं होता है।

लोकतंत्र व्यक्ति को इकाई मानता है, किसी जाति समूह को नहीं। राजनीतिक समानता की बदौलत मिले वयस्क मताधिकार ने संख्यावल की महत्ता को बढ़ा दिया है, और जब राजनीति का प्रमुख ध्येय चुनाव जीतना हो जाये तो संख्याबल को संगठित रखने वाली जाति और जातीय संगठनों की भूमिका बढ़ना स्वभाविक है। यह भी सच है जातीय संगठन अपनी जाति के लोगों को राजनीतिक दलों के मुकाबले संगठित रखने में ज्यादा सफल रहा है। इसी को ध्यान हुए राजनीतिक दल जातीय संगठनों और उनके नेताओं को पूरी तवज्जों देते हैं और राजनीतिक सत्ता प्राप्ति के लिए उनका उपयोग करने में कामयाब रहे हैं। दूसरी तरफ हमारी सामाजिक जातियॉ संगठित होकर राजनीतिक शक्ति बनकर राजनीति पर हावी होने लगी है और आवश्यकता पड़ने पर अपने जातिय हितों के लिए दबाव समूहों की तरह कार्य करने लगी है। राजनीतिक दलों की यह मजबूरी होती है कि जन–प्रतिनिधियों के लिए उम्मीदवार चयन में उन्हें जातीय समीकरणों का ध्यान रखना पड़ता है। ऐसा करने से राजनीतिक दलों के लिए भी जीत में सहुलियत हो जाती है क्योंकि जातीय संगठनों द्वारा समर्थित उम्मीदवारों को जिताने में उसकी जाति के संगठन भी पूरी ताकत झौंक डालते हैं। जाति आधारित उम्मीदवार को अपनी जाति का बना बनाया संगठन और संसाधन भी मिल जाते हैं। हमारी समाज का मतदाता विकास की इच्छा रखता है और निरन्तर विकास कराने का इन्तजार करता है, किन्तु मतदान करते समय सभी गिले–सिकवे भुलाकर अपना मतदान जातीयता को समर्पित कर देता है। जो हमें विवेक शून्यता की ओर ले जाता है।

भारतीय लोकतंत्र में जातिगत राजनीति केन्द्र स्तर की तुलना में राज्य स्तर तथा स्थानीय स्तर पर अधिक प्रभावी है। इसकी जड़ें स्वतंत्रता से पूर्व देखी जाती है। तमिलनाडू में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ और द्रविड कडगम, जस्टिस पार्टी का गठन हुआ बाद में यहीं द्रविड मुनेत्र कडगम दल बना था। इसी के चलते बाद में कामराज नाडार को राजनीति में ऊँचा उठाया गया। वहॉ ब्राह्मण– और निम्न जातियों में संघर्ष चलता रहा है। उसी प्रकार महाराष्ट्र में ब्राह्मण तथा मराठाओं के बीच सत्ता के लिए संघर्ष चला स्वतंत्रता के बाद महाराष्ट्र राज्य बनने के बाद मराठाओं का आधिपत्य स्थापित हुआ है। गुजरात, आन्ध्रप्रदेश तथा कर्नाटक में जातीय राजनीति में मध्यमवर्गीय जातियों के मध्य प्रतिस्पर्धा रही है। गुजरात में पाटीदार तथा क्षत्रिय जातियों के बीच आन्ध्रप्रदेश में कामा तथा रेड्डी जातियों के बीच एवं कर्नाटक में लिंगायत तथा बोक्कलिंग जातियों के बीच राजनीतिक वर्चस्व का संघर्ष होता रहा है। केरल की राजनीति में तीन समुदायों यथा हिन्दू, क्रिश्चियन, मुसलमान, जिसमें एजवा जाति प्रमुख है, के इर्द–गिर्द राजनीति घूमती है। बिहार में संघर्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा कायस्थों का मुकावला पिछड़ी जातियों से होता है। वहॉ की राजनीति में अगड़ा–पिछड़ा की प्रतिस्पर्द्धा कई वार खूनी संघर्ष भी बन जाता है। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ में पहले उच्च एवं मध्यम जातियों का सत्ता पर वर्चस्व रहा किन्तु बाद में पिछड़ी जातियों में चेतना आने के बाद सत्ता संघर्ष चलता है। राजस्थान में राजपूत–जाटों में सत्ता संघर्ष था, बाद में मीना तथा गुर्जर भी राजनीति को प्रभावित करने लगे हैं। उत्तर प्रदेश के शुरू में उच्च एवं मध्यम वर्ग का प्रभाव रहा था। बाद में पिछड़ी जातियॉ तथा अनुसूचित जातियॉ भी सत्ता पर काबिज होने लगी है। आसाम तथा उत्तर–पूर्व के राज्यों में राजनीति जन–जातियों के इर्द–गिर्द घूमने लगी है। पश्चिम बंगाल में भी पिछड़ों का वर्चस्व बढा है। उक्त से पता चलता है कि राज्य स्तर पर जातीय समीकरण भारतीय राजनीति को प्रभावित करते हैं। इन सब प्रभावों का असर केन्द्रीय स्तर पर भी पड़ता है। इसलिए दुनिया के राजनीतिज्ञ भारतीय राजनीति को जातियों के इर्द–गिर्द घूमती बताते हैं।

निष्कर्ष

यह सच है कि जातिगत राजनीति ने उपेक्षित जातियों की शक्तियॉ बढाई है। उनके हितों को ध्यान में रखा जाने लगा है। पिछड़ी जातियों को साथ लेना सत्ता में आने के लिए जरूरत बन गई है। और जाति के माध्यम से एक संगठित समूह वोट बैंक के रूप में मिल जाता है। किन्तु जातियॉ सम्पूर्ण व्यवस्था में विद्यमान है। इसके लिए राजनीति अकेली दोषी नहीं है। जातिगत पदसोपान, जातिगत विवाह, जातिगत व्यवसाय तथा जातीगत आरक्षण का विस्तार ये सभी तत्व इसे बनाये रखते हैं। जातिगत जनगणना अंग्रेजों ने शुरू की जिसका उद्देश्य ''फूट डालो राज्य करो'' था। अब इसकी निरन्तरता बने रहने के लिए क्या कारण है? यद्यपि शहरी अंचल में शिथिल होने लगी है। किन्तु ग्रामीण परिवेश में यथावत है। जातिगत राजनीति इसे और उकेर देती है।

सुझाव

जाति भारतीय राजनीति का सबसे प्रभावशाली तत्व बन गया है। एक तरफ जहॉ मेक इन इण्डिया, राइजिंग इण्डिया, स्किल इण्डिया, सबका साथ सबका विकास जैसे बडे–बडे नारे लगाते हैं। किन्तु अन्त में किसी भी दल को जाति तुष्टीकरण की नीति व अपने वोट बैंक की राजनीति की ओर लौटना पड़ता है। अपने किये हुए वायदे सब घरे रह जाते है। जातिगत राजनीति

को ही बढावा मिलता है। यह विचारणीय बात है कि देश की राजनीति में जाति जैसी संकुचित व अविवेक पूर्ण इकाई को महिमा मण्डित न किया जाय। क्योंकि जाति विहीन समाज की संकल्पना एक उपहास बनकर रह जायेगी। राजनीतिक दलों द्वारा जाती को प्राणवायु दी जा रही है। इन्हें प्रतिवन्धित किया जाय नहीं तो प्रत्येक व्यक्ति जातिगत हितों को राष्ट्रीय हितों व नैतिक हितों से ऊपर रखने लगेगा। इस प्रकार लोककल्याणकारी सरकार का सपना बाधित होता है। साथ ही देश की अखण्डता में जातिगत नेतृत्व बाधक बन सकता है। समाज में अन्तर्विरोध बढाने के स्थान पर समरसता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह ठीक है कि जातिगत राजनीति से उपेक्षित जातियों में जागृति आई है किन्तु इससे अनेक समस्याऐं सुलझने के बजाय उलझने लगी है। इसका निराकरण राजनीतिक इच्छा शक्ति से ही किया जा सकता है। ऐसे बदलाव के लिए राजनीतिक दलों से शुरूआत की जाय। जनता जनार्दन इसमें सहयोग करें। एक लोक अभियान 19 चलाने की आवश्यकता है। इससे जुड़कर व्यक्ति समूह राजनीतिक दलों व सरकार को उचित मार्ग दर्शन भी दे सकेंगे। आज भारतीय नौ जवान सिर्फ शिक्षा एवं रोजगार ही नहीं मांग रहे हैं बल्कि वे देश के नव निर्माण में योगदान भी देना चाहते हैं। किसी भी अन्याय व भ्रष्टाचार के विरूद्ध आवाज भी उठाने लगे है। समय नई दिशा की ओर आगे बढ़ने का है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. मोदी एवं मोदी, महावीर प्रसाद व सरोज – भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियॉ, विभव भारती पब्लिकेशनस, नई दिल्ली*
2. *डॉ. जैन, पुखराज– भारतीय राजव्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा*
3. *भारद्वाज, महेष का विषलेषण – राजस्थान पत्रिका, दिनांक 15.01.2019,*
4. *यादव, योगेन्द्र का विषलेषण – दैनिक भास्कर दिनांक 19.12.2018*
5. *गर्ग, श्रवण का विषलेषण दैनिक भास्कर दिनांक 20. 01.2019*
6. *सिंह, एन,के, दैनिक भास्कर दिनांक 17.01.2019*
7. *श्री निवासन एसएन. :– कास्ट इन मॉडर्न इण्डिया एण्ड अदर ऐसे 1962*
8. *प्रो. कोठारी, रजनी – कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया 1970*
9. *मानचन्द खण्डेला – भारतीय राजनीति का बदलता परिदृश्य, अरिहंत पब्लिसिंग हाउस जयपुर।*
10. *महला, अशोक कुमार व पीकॉक– भारतीय राज व्यवस्था, अरिहंत पब्लिसिंग हाउस, जयपुर।*
11. *सुषमा यादव एवं शर्मा – भारतीय राजनीति ज्वलंत प्रश्न, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली।*
12. *रजनी कोठारी – पॉलिटिक्स इन इण्डिया, दिल्ली।*
13. *पंचायती राज अपडेट, इस्टीटयूट ऑफ सोसल साइन्सेस, नई दिल्ली, विभिन्न अंक।*
14. *पत्र–पत्रिकाऐं – विभिन्न अंक*